भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-2, अंक-9	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-15.00
मंगलवार, 12 सित.' 78	मानद सहसम्पादक: श्री महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 1.25

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

जेतलपुर में महारुद्रयज्ञ

सहजानंदस्वामी मानते थे कि केवल शास्त्रार्थ में जीतने से हिंसामय यज्ञों की यह दुष्ट रीति नष्ट नहीं होने वाली है। अतः महाराज ने अहिंसामय यज्ञों की परम्परा खड़ी कर दी और आदर्श यज्ञ का उदाहरण लोगों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। इसके पूर्व भी धर्मधुरा की स्वीकृति के पश्चात् शीघ्र ही महाराज ने पीपलाणा, कारियाणि आदि स्थानों में विष्णुयाग जैसे यज्ञ किये थे। किन्तु, विशेषरूप से अहिंसामय यज्ञ का गुजरात में प्रतिपादन करने के लिये इन्होंने संवत् 1865 के आसपास अहमदाबाद के पास जेतलपुर गाँव में 18 दिन का महारुद्र यज्ञ करवाने का निश्चय किया। गाँव के तालाब के किनारे पर महल है वहां श्रीजी महाराज ने निवास किया और सारे कच्छ, काठियावाड़ और गुजरात के हर ज्ञाति के ब्राह्मणों (जिनकी संख्या करीब एक लाख की थी) को निमंत्रण दिया। पांच सौ मन घी और सौ बैलगाड़ी भर करके गुड़ मंगवाया। एक बैलगाड़ी में गेहूँ डलवा कर महाराज स्वयं जेतलपुर की गली गली घर घर में घूमे और प्रत्येक गृहिणी को दो मन गेहूँ पीसने को कहा। 'जेतलपुर में एक महान यज्ञ करना है, असंख्य ब्राह्मणों को भोजन करवाना है, आप सबका सहकार चाहिए.....'- श्रीजी महाराज की यह बात गाँव लोको ने भक्ति से स्वीकार कर ली।

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो ...

इस गाँव में एक वेश्या रहती थी। घर के नजदीक आये हुए महाराज के शब्द सुन कर वह अपने घर से बाहर आई। भगवान स्वामिनारायण के दर्शन होते ही इसकी सारी वृत्तियाँ महाराज की मनोहर रसधन मूर्ति में स्थिर हो गई। वह सात्त्विकता में खींची आई। अद्‌भुत आकर्षण हुआ। परमात्मा की एक विशिष्ट शक्ति है, और वह है 'आकर्षण शक्ति'। अपनी इस विशिष्ट शक्ति से वे अपने सम्बन्ध में आने वाले सबको सहज आत्मीयता से अपने में स्वाभाविक खींच लेते हैं, परिपूर्ण कर देते हैं और ऐसी श्रद्धा हो जाती है कि 'यह प्रभु-यह संत मेरे हैं'।

इस आकर्षण के कारण वेश्या ने अपने घर की सीड़ियों पर खड़े खड़े सामने बैलगाड़ी पर बैठे हुए महाराज को पूछा, 'हे स्वामिन् !' मैं गेहूँ पीस कर आपकी सेवा करना चाहती हूँ, मुझे आप गेहूँ पीसने की सेवा करने देंगे क्या?'

इस प्रश्न का कारण यह था कि वह अपने आपको जानती थी। वह पतिता थी। उसके मन में था कि शायद मेरी इस सामाजिक स्थिति और मेरे अनैतिक आचरण के कारण इस धर्मकार्य में यह स्वामी मुझे योगदान करने का निषेध करेंगे। किन्तु, 'प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो' यह भावना के साथ उसने महाराज को याचना की थी.....और फिर **प्रभु तो सर्वदा समदर्शी हैं** इतना ही नहीं, पतितापावन भी है।

इन्होंने शीघ्र कहा-'हाँ'।

सहजानंदस्वामी का यह उत्तर सुनकर वह सन्न हो गई, तथापि महाराज के दर्शन करने से उसके मन में जो आत्मीयता और प्रीति का भाव जागृत हुआ था इस से केवल स्त्रीसुलभ विनोद करते हुए उसने कहा, 'मुझे आप इसका क्या पारिश्रमिक देंगे?'

करुणामूर्ति प्रभु ने सत्वर कहा, 'मैं रुपये-पैसे में पारिश्रमिक नहीं देता हूँ, किन्तु जो जो यह सेवा करेंगे इन सबको उनके अन्त समय (मृत्यु के समय) मैं स्वयं लेने को आऊंगा और इन सबका आत्यन्तिक कल्याण होकर रहेगा।'

'मेरा भी?' वेश्या ने पूछा।

'हाँ अगर अपने हाथों से पीसोगी तो'-महाराज ने प्रत्युत्तर दिया।

वेश्या ने अपने मन में सोचा, 'अहोहो !!! कैसे है मेरे पतित कर्म? कैसे मैं इन कर्मों के पाश से मुक्ति प्राप्त करूंगी? और यह स्वामी केवल दो मन गेहूं पीसने का कितना बड़ा पारिश्रमिक दे रहे हैं। मुझे सर्व कर्मबन्धनों से मुक्त करने की बात कर रहे हैं। कल्याण का अभयदान दे रहे हैं। वास्तव में यह परमात्मा होंगे, क्योंकि परमात्मा के अलावा कोई भी इस प्रकार की करुणा की बारिश नहीं बरसा सकता है। चलो, दो मन गेहूँ पीस दूं और उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर लूँ।'

इस प्रकार सोचकर वेश्या ने कहा, 'ठीक है भगवन्, मुझे मेरे हिस्से के गेहूं पीसने के लिये दे दीजिए।'

महाराज ने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर दो मन गेहूं इस को दे दिया। वेश्या घर में गेहूं ले गई। बाद में उसने स्नान किया और पवित्र हुई। खुद ने पीसने की चक्की साफ की। तब दासियों ने आग्रहपूर्वक कहा–'लाईए, हम पीस दें। आपने ऐसा कार्य कभी नहीं किया है। आपको कष्ट होगा, थकान लगेगी, हाथ में पीड़ा होगी.....'

किन्तु वेश्या का मन अब अपना नहीं रहा था। वह तो महाराज के अधीन हो गया था। वह दृढ़ स्वर में बोली–'नहीं, मैं स्वयं अपने हाथ से पीसूंगी। भगवान ने मुझे स्वयं पीसने को कहा है।'

और ..... महाराज का स्मरण करते-करते वह वेश्या गेहूं पीसने बैठ गई। आदत नहीं थी, थकान लगी, सारा शरीर पसीने से भीग गया, हाथ में लाल-लाल छाले पड़ गये। किन्तु उसने दृढ़ निश्चय किया था कि कल सुबह तक में मुझे गेहूं पीस कर आटा भगवान को देना ही है। उसने न लिया भोजन, न लिया पानी। पीसती ही गई, महाराज की मूर्ति में एकाग्र बनकर। जैसे-जैसे गेहूं पीसे जाते थे वैसे उसके मन की मलीनता नष्ट होती जा रही थी। कुत्सित विचारों और वासनाओं के स्थान पर महाराज की परम करुणामयी मूर्ति स्थिर होती गई। वह प्रभुमय हो

गई !

प्रभात उदित होते ही पीसने का कार्य समाप्त हुआ। वेश्या ने स्नान किया। पवित्र, सादे वस्त्र पहनें। आभूषण को त्याग दिया और आटे की बड़ी टोकरी अपने सिर पर लाद कर, चलकर महाराज के पास आई। आटे की टोकरी महाराज के चरणों में रख दी और प्रणाम करके नतमस्तक खड़ी रह गई, जैसे आशीर्वाद की याचना न करती हो। अंतर्यामी प्रभु अत्यन्त प्रसन्न हो गए। किन्तु वे जानते थे कि साथी समाज को आशंकाएं है कि यह तो वेश्या है, कभी अपने आप सेवा करने वाली नहीं है। किसी दासी से कार्य करवाया होगा। इसको आशीर्वाद क्यों मिले? किन्तु वे नहीं जानते थे कि गीता का–

अपि चेत्सुदुराचारी भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता - 9,30)

[यदि (कोई) अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझे निरन्तर भजता है वह साधु ही है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है।]

– यह श्लोक आज यहां चरितार्थ हो रहा था। भगवान की इस महानता को प्राकृत बुद्धिवाले कैसे समझ सकते हैं? इनको समझाने के लिये और वेश्या के दिल में प्रभु के प्रति जो प्रेम हुआ था इसको और वेश्या की निर्मल अंतःकरण की वृत्ति को सबके सामने उद्घाटित करने के लिये महाराज ने पूछा–'क्या यह गेहूं आपने स्वयं पीसा है?'

'हां, स्वामिन् ! मैंने ही पीसा है'–यूं कहकर उसने अपनी दोनों हथेलियां दिखाई जिस पर सख्त छाले पड़ गये थे, खून दिखाई पड़ता था।

सारी सभा स्तब्ध हो गई। सब की शङ्का का समाधान हो गया और परम करुणानिधि भगवान श्रीजी महाराज सहजानंदस्वामी ने आशीर्वाद दिया–'तेरी नित्यानंदस्वामी जैसा कल्याण होगा।'

कहां नैष्ठिक ब्रह्मचारी यदि नित्यानंदस्वामी और कहां व्यभिचारिणी वेश्या? वेश्या ने ऐसी कौन-सी बड़ी साधना की थी कि इतना असाधारण वरदान उसको प्राप्त हुआ? केवल उसने महाराज को पहचान लिया था। 'मनुष्यस्वरूप में विचरण करने वाली यह मूर्ति भगवान है'–इसकी उसको दृढ़ श्रद्धा हो गई थी। उसने भगवान को पहचान लिया और भगवान की आज्ञा से, उनकी प्रसन्नता के लिये सेवा की। भगवान ने यही देखा कि इसने मुझे पहचान लिया। **मानवस्वरूप में विचरण करने वाली परमात्मा की मूर्ति का सच्चा परिचय यह ही है परमपद। इस तथ्य का दृढ़ निश्चय वह ही है कल्याण।**

श्रीजी महाराज ने भी वचनामृत वड़ताल 19 में कहा है कि प्रभु के अवतार या उन्हें अखंड धारण करने वाले भगवत्सवरूप संत का परिचय होना यह ही सच्चे भक्तपना का चिन्ह है। रामायण के पृष्ठ में एक पात्र है जो सीता आदि पात्रों के समान हमें इतना परिचित नहीं है, किन्तु वह है प्रभु का सच्चा सहृदयी पात्र। उर्मिला लक्ष्मणजी की अर्धांगना थी। इन्होंने परमात्मा को सम्यक् रूप से पहचान लिया था। इन्होंने प्रभु को अपना सर्वस्व मान लिया था। 'मेरे लिये उर्मिला या लक्ष्मण बहुत सहन कर रहे हैं' ऐसा भाव-ऐसा ख्याल परमात्मा रामचंद्रजी को कभी न आये ऐसी एक जीवंत भावना उर्मिला के अस्तित्व के कोने-कोने में रम गई थी। लक्ष्मणजी को इन्होंनेअपनी ओर से अंतरब्राह्य मुक्त कर दिया था ताकि वह श्रीराम का ही सतत चिंतन कर सकें, श्रीराम की ही सेवा कर सकें। ऐसा पवित्र था उर्मिला का

बुद्धियोग जिसकी मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्रजी के पास इन्होंने प्रार्थना की थी और जो इन्हों को मिला था। वास्तव में यह है सच्चा समर्पणयुक्त भक्तिभाव ! रावण के पुत्र इन्द्रजीत की पत्नी का नाम था सुलोचना। वह भी एक महान सती थी– 'निशंक पतिपरायण थी। किन्तु सुलोचना को परमात्मा का सम्यक् परिचय नहीं था। उसकी गति थी सतीत्व के आदर्श तक ! अतः सुलोचना ने प्रभु रामचंद्रजी के पास मांगा केवल इन्द्रजीत का मृतदेह !! यदि सुलोचना को परमात्मा का सच्चा परिचय (जैसा उर्मिला को था।) होता, तो वह मांगती की हम दोनों आपके भक्त बनें।'

तो, हमारा आदर्श क्या होना चाहिए?– 'भक्ति।' अन्य प्रकार की उत्कृष्टता या सात्विक आदर्श ठीक है, किन्तु असली प्राप्तव्य है भगवद्-भक्ति-प्रभु या प्रभुभाव जिनको प्राप्त है ऐसे प्रभु के स्वरूप संत की भक्ति। यही ही है हमारी शाश्वत सुरक्षा। **आत्यंतिक कल्याण की प्रप्ति के लिए जो आध्यात्मिक मार्ग है इसमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य आदि गुण भी वास्तव में उपयोगी नहीं है क्योंकि चिदाकाश की अक्षरधाम की भूमिका इसके ऊपर की है।**

श्रीमद् भागवत् का यह श्लोक देखिए–

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे।
यद्भाव्यं तद् भवतु भगवन्पूर्वकर्मानुरूपम्॥
एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्म-जन्मान्तरेऽपि।
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु॥

–मुझे धर्म में, पैसे इकट्ठे करने में या इन्द्रियों के भोगविलास में **रस नहीं है।** यह मैं मांगता भी नहीं हूं। इन विषयों में तो प्रारब्ध कर्मानुसार जो होना हो वह होता रहे। मुझे मांगना है तो यह ही है कि इस जन्म में और आने वाले सभी जन्मों में मेरी आपके चरणकमलों में निश्चल भक्ति हो।

'आपके चरणकमलों में' अर्थात् अक्षरधाम की जो दिव्यमूर्ति स्वयं या भगवत्स्वरूप संत के रूप में पृथ्वी ऊपर विचरण करती हो उसके चरणकमलों में। उसको पहचानना, उसमें श्रद्धा रखना, उसके आनंद में भाव-विभोर बन जाना वह ही है भक्ति ! जेतलपुर की यह वेश्या ने महाप्रभु की महामांगल्यपूर्ण रसधन मूर्ति को पहचान लिया था तो श्रीजीकृपा से वह आत्यंतिक कल्याण की अधिकारिणी हो गई। वह परमात्ममूर्ति में रसलीन हो गई, अतः विषयों के राग से वह मुक्त हो गई। संसार और संसार का रस विष हो गया। वृत्तियों के विलास की पूर्णाहुति हो गई और एक वेश्या सती वैशाली जैसी पवित्र बन गई।

उसने महाराज को अपनी मंडली के साथ अपने घर में भोजन करने का और अपने निवास स्थान को पवित्र करने का निमंत्रण दिया। महाराज, सन्तों-हरिभक्तों आदि के साथ उसके महल गये, स्थान पावन किया और इन्होंने अपने हाथों से सबको भोजन परोस कर आनंद करवाया।

इस प्रकार महाराज ने जेतलपुर में अहिंसामय महारूद्र यज्ञ किया और कोटि कल्प में भी जन्म-मरण के चक्र से जिसकी मुक्ति संभावित नहीं थी ऐसी वह वेश्या को क्षणमात्र में उस फंदे से मुक्ति दिलवाई और '**अहिंसयज्ञप्रस्तोता**' की उपाधि को चरितार्थ किया। इस प्रसंग की गवाही आज भी दे रहे हैं जेतलपुर के वे दो महल-एक जहां तालाब के किनारे पर महाराज ने उस समय निवास किया वह और दूसरा वेश्या का महल।

इस जेतलपुर गांव की महिमा वच. जेत. 5 में स्वयं महाराज ने इस प्रकार कही है–

'देखिए, इस जेतलपुर गांव में हमने अनेक यज्ञ किये और कुछ एक वर्षों से हम यहां रहते हैं और इस तालाब में सब सन्तों के साथ हमने हजारों बार स्नान किया है और इस गांव में हर

घर में हम सौ-सौ बार घूमे हैं और हर घर में भोजन किया है और इस गांव को और आसपास के जंगल को हमने वृंदावन से अधिक रमणस्थली की है.....'

भगवान द्वारा आयोजित जेतलपुर के इस महान यज्ञकार्य में अहमदाबाद के वामपंथिओं ने और अन्य द्वेषी ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार के विघ्न डाले थे। उदाहरणार्थ-यज्ञकार्य के लिए इकट्ठा किया हुआ काफी घी तालाब में डाल दिया था। किन्तु किसी से कुछ नहीं हुआ। यह निर्विघ्नतया परिसमाप्त हुआ। वास्तव में भगवान की भगवत्ता का उन्हें परिचय नहीं होने के कारण वे अहिंसयज्ञ के प्रस्तोता श्रीजी महाराज का तेजोद्वेष करते थे।

-क्रमशः

REMINDER RE : SUBSCRIPTION

We request you to kindly remit us at an early date, your subscription of Rs. 15/- by M.O., it still unpaid for the current year's issues of your 'भगवत्कृपा' the Divien Grace.'

The Real Essence of TANTRA

The traditional Tantras no doubt advocate most superb and noble doctrines and principles, the initial techniques of Kundalini Yoga and Sadhana. Unfortunately, in their application the emphasis was put on sex and vital force rather than in keeping with their fundamental assumptions, on the cult of ecstasy based on love sensation and free gifts bestowed by the Almighty for the natural growth of spiritual development to their fullest extent. It is common knowledge that sex is an alternative tempting feature for real and pure love and has renowned Yogis from the peacks of spiritual status to perdition because they stooped even slightly to indulgence. Like a ball let fall from the top of a height of stairs, the spiritual sadhaka falls down and down and down never to reach the top again. The vital froce often generates hostile forces which are extremely uncontrollable Unless one practises such disciplines under the proper guidance and inspired vision of a guru, these hostile forces cause the irreparable damage to the personality. It is for this reason that in all the Tantric texts, a warning is given that the awakening of the kundalini shakti residing at the Mooladhara is like a fire which becomes uncontrollable sometimes inspite of all the prescribed practices and rituals. From the middle ages, we have accounts of the innumerable experiments

carried out by the Tantrikas which clearly indicate that unless the grace and guidance of supramental Realised Master is there the sadhakas will be subjected to mental and other aberations. A Spiritual Master has the capacity of a Homeopathic physician who administers poison to eradicate inherent poison.

In the preparatory stage disciples being unripe and immature are unable to sustain and digest the potential forces arising from the energy centres. They become immediate victims of these hostile forces and can not have purification or control of mind. In most cases also states of madness, higher tensions and terufice excitements trouble their mind. Such descrpitons are found in Tantric literature in plenty.

Even if we grant that the Kundalini is awakened with the proper regulation of natural instincts and all the chakras are pierced under the strict guidance of a competent Spiritual Master, it is doubtful that utmost purity of the inner instruments like body, mind, life, consciousness, prana etc. will occur and that there is mastery or perfection of Primordial Prakriti. It means, therefore, there is no transformation in our unrefined nature into divine nature which alone can enable us to enjoy and realise Satchidananda Swaroopa.

Real Tantra, therefore, does not concern itself merely with the awakening of the power aspect of Adyashakti. But it conurns itself with the inner consciouness or inner Being as embodied Self, residing in the inner most recesses of the heart. It is this inner consciousess, which has to be awakened, so that the embodied Self has the vision and the realisation of all the five aspects of Adyashakti and finally emerges with devotional Bhakti into the Divine Consciousness as was done by Kabir, Tukaram, Prahlad and Mira.

In the real Tantra we are not concerned with the perfection of energy centres. On the contrary, it can be authentically declared from the empirical truths and experiments and also from our holy scriptures that **the main Centre (Parama Bindu) actually lies in the inner most portion of the heart as an embodied consciouness, as the self, as a spark or as an Amsa as Lord Sri Kishan has told us in the Bhagvad Gita. It is this which is to be activated. It has to be firstly made aware of its real Divine nature For this purpose the inner seed has to be exploded by an awakening and illumination by the grace of the Spiritual Master.** It was for this reason that Lord Sri Krishna said to Arjuna, "Awake, Awake and be Adhyatma yogi."

No doubt we are differing here from the view points of the old Traditional Tantrics and Sidda Purushas in emphasising fundamentally on the need for the awakening of the inner Being's Bindu in the centre of the heart. This does not mean we are disregarding any of the old theories, doctrines and principles of psycho-physical phenomenon of Kundalini Shakti or that we do not have respect for Traditional Tantrics and Siddha Purushas, To some this departure from an emphasis on Mooladhara and other Chakras which have to be pierced, according to them for the union of body,

mind, prana, life and Shakti with Parama Shiva residing in Sahasrara, a Parama Bindu in the brain and head as declared in Mahamudra, Mahanirvana and other revealed Tantras, may appear rather unwarranted and preposterous.

However, according to Akshar-Purushottam Doctrine, Muladhara means Mul-Adhara, i.e. the main foundational aspect of its existance or its residence. All the great prophets or relegions are agreed in this respect. **Lord Jesus Spoke of the kingdom of Heaven as within the heart. He did not refer to Sahasrara or Mooladhara. Our Vedas spoke of the Hiranyamaya Purusha as residing in the Hridaya Kamal,** eternal Purusha resides in the heart. In the Upanishads like the Katha also this is stated. Lord Sri Krishna in Gita also confirms this by speaking of Kshara Purusha, Akshara Purusha and Param Purusha or Purushottama. **Lord Swaminarayana described the or igrorant self or the embodied live residing in the heart as the Vikriti of Pancha Mahabhutas just as semen or veerya is a Vikriti of food stuff. In reality the Central Bindu has to be separated from Avidya and ignorance,** from attachment or aversion to fear and clinging on to the ego sense. It must be separated from its attachment to Karmendriyas and Jnanendriyas in six aspects of six minds as said by Shiva. When all these six stages are transcended by the grace of the Guru the Jivatma has the intercourse with the Cosmic Being and emerges into the Supramental Being as Eternal Brahman and enjoys the highest form and esctasy of love, power, peace and action emancipation or freedom. It is not merely liberation from bondage or from ignorant donsciousness to the higher illumined consciousness but the Jiva assumes Divine nature with Divine qualities of humbleness, creative, positive equality, fearlessness, egolessness. Above all, mind and life work as Divine Chaitanya Prakriti. The Divine entities then manifest themselves in the human being with the totality of sat, chit and ananda consciousness in this very life. This is real Jivanmukti or Sadharmya mukt.

In all the Tantric literatures of the last 6000 year, there are descriptions and instructions regarding chakras psycho-physical aspects and the workship of Adyashakti exclusively. Predominantly one aspect of the divine in the Panchadeva upasana must ultimately lead to all the five aspects of the Supreme Self with its innumerable powers, but what we find on the contrary is conflict and sectarian fighting about docrtines and their respective superiority between Shaivities and Vaishnavas. Even among the five Acharyas, there is no consensus We must remeber here that where there is conflict and confusion, there Eternal Truth cannot exist. Why is this so? The reason is that because of the continuance of the mind, which is ignorant, the absolute knowledge of God or Eternal Brahman cannot result. Therefore, we have adopted a new and **revolutionary approach** based on the new Knowledge of Akshar Brahman in which there **is the reconcilation of all the three Purushas in a transcendent unity. Our fundamental starting point**

is from the heart centre and natural Pranayam for Nabhi awakening. By this process, thought, i.e. mind, emotion and feeling, i.e. heart, body, prana, lfe and consciousness all merge togather in a permanent communion with Eternal Brahman, This is truly Nirvikalpa Samadhi or pure attributeless or contentless consciousness.

We have advocated, therefore, Swaroop Yoga instead or Kundalini Yoga because we are confident that by following this right path, one could attain siddhi within a maximum period of seven days. However, in this new approach, we discard all siddhis but emphasise the total transromation of the un-refined nature of man into Divine nature and the achievement of oneness with the Supreme Being. In this there is a change in the total personality. The embodied Self ultimately becomes Godlike fully enjoying Adyashakti's power, bliss, shanti and dynamic action. This is entirely a new vision and is centred on the adoption of an attitude of love in adoration and workship of eternal Brahman and Parabrahman, Lord shiva in Mahanirvana Tantra has also affirmed this. **This is the real essence of Tantra.** Whether one believes it or not, depents upon one's own likes and dislikes. But a real seeker of truth ought to accept it if it is going to lead him to the full ultimate experience and realisation of Satyam Jnanam-Anantam-Brahman in this very life.

The Extract from
Pujya Kakaji's
Valuable Volume
'The Real Essence or Tantra'.

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	16.9.78 शनिवार	चन्द्रग्रहण, रात्रि 10-52 से 2-21
2.	दि.	20.9.78 बुधवार	ब्र. स्व. स्वामिश्री शास्त्रीजी महाराज का श्राद्ध
3.	दि.	26.9.78 मंगलवार	श्रीजी महाराज और अ.म.मु. जागास्वामी का श्राद्ध
4.	दि.	27.9.78 बुधवार	ब्र.स्व. स्वामिश्री योगीजी महाराज का श्राद्ध
5.	दि.	28.9.78 गुरुवार	इन्दिरा एकादशी, व्रत
6.	दि.	29.9.78 शुक्रवार	मू.अ.मू. गुणातीतानंद स्वामी और अ.म.मू. भगतजी महाराज का श्राद्ध
7.	दि.	2.10.78 सोमवार	सोमवती अमावस्या
8.	दि.	3.10.78 मंगलवार	नवरात्रारंभ
9.	दि.	10.10.78 मंगलवार	नवमी, श्री स्वामिनारायण जयंती
10.	दि.	11.10.78 बुधवार	विजयादशमी-दशहरा
11.	दि.	12.10.78 गुरुवार	पाशांकुशा एकादशी, व्रत
12.	दि.	15.10.78 रविवार	शरदपूर्णिमा, मू.अ.मू. गुणातीतानंदस्वामी का प्राकट्यदिन और प.पू.प्र.ब्र.स्व. हरिप्रसाद स्वामीजी का दीक्षादिन

साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदास जी द्वारा योगी डिवाईन सोसाईटी,
ए-103, अशोक विहार-III, दिल्ली-110052 फोनः 518838
मुद्रण स्थानः ठक्कर प्रिंटिंग प्रेस, 2588, बस्ती पंजाबियान, सब्जी मण्डी, दिल्ली-110077